॥ श्रीः ॥

❀ हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला ❀
२२३



श्रीभरतमुनिविरचितं

नाट्यशास्त्रम्

'मयूख' नामकहिन्दीटीकासहितम्

(प्रथमद्वितीयाध्यायमात्रम्)

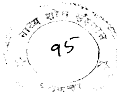
अनुवादकः—
श्री पण्डित रामगोविन्द शुक्लः
न्याय-व्याकरण-साहित्याचार्यः



चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी-१

सं० २०१४] मूल्यं [illegible] [सन् १९५७

प्रकाशकः—
चौखम्बा-संस्कृत-सीरिज आफिस,
वाराणसी–१



Chowkhamba Sanskrit Series Office,
Post Box 8, Varanasi.
1957.

(द्वितीय संस्करण)

—मुद्रक—
विद्याविलास प्रेस,
वाराणसी–१

दो शब्द

जबसे चारों ओर राष्ट्रभाषाद्वारा सब विषयोंके शिक्षणकी पुकार मची है तबसे अनेक विद्वानोंने संस्कृतग्रन्थोंका अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया है। इधर जो ग्रन्थ परीक्षाओं में आ गये हैं उनकी माँग बढ़ती ही जारही है। जब मैं पिछले वर्ष कालिदास ग्रन्थावलीका सम्पादन कर रहा था उसी समय मेरे मनमें यह बात आई कि नाट्यशास्त्रका हिन्दी अनुवाद हो जाना आवश्यक है। मैंने आदरणीय आचार्य श्रीसीताराम चतुर्वेदीजी साहित्याचार्य, एम० ए० महोदयसे इस कार्यमें सहायताके लिये कहा। उन्होंने उस समय राय दी कि मैं जो भारतीय और यूरोपीय दोनों प्रकारके नाट्यशास्त्रोंका संयुक्त ग्रन्थ निकाल रहा हूँ उसके समाप्त हो जानेपर यह कार्य किया जाय। इसी बीचमें मेरे मित्र श्रीजयकृष्णदासजी गुप्तने यह प्रार्थना की कि दो अध्यायोंका अनुवाद करके आप अविलम्ब दे दें। मैंने पाँच दिनमें दो अध्यायोंका अनुवाद कर दिया। जो आप सबोंके सामने है।

मेरी इच्छा थी कि नाट्यशास्त्रके जो संस्करण आज मिल रहे हैं जिनके पाठोंमें बड़ी गड़बड़ी है उन्हें ठीक देखकर ही अनुवाद किया जाय किन्तु यह कार्य अभी [illegible]रा न कर सका।

मेरे मित्र श्रीकृष्णमोहन जी ठक्कुर जो इस समय हिन्दू विश्वविद्यालयमें रिसर्च कर रहे हैं उन्होंने पाठके विषय में जो सुझाव दिया उसका समादर मैंने कर लिया है। मुझे विश्वास है कि शिक्षा प्रेमी लोग इस ग्रंथका उचित समादर करेंगे।

नागपञ्चमी सं० २००९
'प्रतिभा' कार्यालय
काशी

—रामगोविन्द शुक्ल

विषय-सूची

प्रथम अध्याय : नाट्यशास्त्रोत्पत्ति १–१७

मंगलाचरण, नाट्यशास्त्रकी उत्पत्तिका प्रश्न, भरत द्वारा उत्तर, इन्द्रकी प्रार्थनापर ब्रह्माद्वारा नाट्यशास्त्रका निर्माण, नाट्यप्रयोगमें देवताओंका असामर्थ्य, ब्रह्माकी आज्ञासे भरतका पुत्रोंको नाट्यशास्त्राध्यापन, सौ पुत्रोंके नाम, तीन वृत्तियोंमें नाट्यप्रयोग, कौशिकी वृत्ति योजन, अप्सराओंकी उत्पत्ति और उनके नाम, प्रयोगमें नारदकी नियुक्ति, प्रथम प्रयोग, नाट्यसाधन-प्रदान, राक्षसों द्वारा उपद्रव, जर्जरकी उत्पत्ति, ब्रह्माकी आज्ञासे विश्वकर्माद्वारा नाट्यशाला-निर्माण, देवताओं द्वारा मण्डप-रक्षण, ब्रह्माद्वारा राक्षसोंको शान्त करना, नाट्यका स्वरूप, रङ्गदेवताके पूजनका प्रयोजन।

द्वितीय अध्याय : प्रेक्षागृह निर्माण १८–३१

तीन प्रकारके प्रेक्षागृह, उनके लक्षण, प्रमाण-निर्णय, मध्यमप्रमाणका मानव-गृहकथन, भूमिविभाग, नापनेके मुहूर्त, रस्सीका स्वरूप, नापनेके नियम, रङ्ग-गृहविभाग, मण्डप-निर्माण, स्तम्भस्थापन, मत्तवारणी, रङ्गशीर्ष, दारुकर्म, भीत-बनाना, चित्र-निर्माण, चतुरस्रगृहलक्षण, त्र्यस्रगृहलक्षण।



॥ श्रीः ॥

नाट्य-शास्त्रम्

'मयूख' नामकहिन्दीटीकासहितम् ।

प्रथमाध्यायः

प्रणम्य शिरसा देवौ पितामहमहेश्वरौ ।
नाट्यशास्त्रं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यदुदाहृतम् ॥ १ ॥

[नाट्यवेदके प्रवर्तक] ब्रह्माजीको और (नटराज) महादेवजीको सिर नवाकर मैं उस नाट्यशास्त्रका वर्णन करता हूँ जिसका निर्माण ब्रह्माजीने किया है ॥ १ ॥

समाप्य जप्यं व्रतिनं स्वसुतैः परिवारितम् ।
अनध्याये कदाचित्तं भरतं नाट्यकोविदम् ॥ २ ॥
मुनयः पर्युपास्यैनमात्रेयप्रमुखाः पुरा ।
पप्रच्छुस्ते महात्मानो नियतेन्द्रियबुद्धयः ॥ ३ ॥
योऽयं भगवता सम्यग् ग्रथितो वेदसम्मितः ।
नाट्यवेदः कथं ब्रह्मन्नुत्पन्नः कस्य वा कृते ॥ ४ ॥
कत्यङ्गः किम्प्रमाणश्च प्रयोगश्चास्य कीदृशः ।
सर्वमेतद् यथातत्त्वं भगवन् वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥

एक बार अनध्यायके दिन नाट्यके आचार्य व्रतशील भरतमुनि सन्ध्या-जप करके अपने पुत्रोंके साथ बैठे थे। इतनेमें ही महात्मा आत्रेयके साथ अनेक संयत-इन्द्रियवाले और संयत-बुद्धिवाले मुनिगण उनके पास पहुंचे और उनसे पूछने लगे कि हे ब्रह्मन् यह जो भली प्रकार रचा हुआ वेद-विहित नाट्यवेद है यह क्यों और किसके लिए उत्पन्न हुआ, इसके कितने अंग हैं, यह कितना बड़ा है और इसका प्रयोग किस प्रकार किया जाता है ? ये सब बातें आप कृपा कर पूरे तत्त्वके साथ हमें समझाइए ॥ २-५ ॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा मुनीनां भरतो मुनिः।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं नाट्यवेदकथां प्रति ॥ ६ ॥
भवद्भिः शुचिभिर्भूत्वा तथाऽवहितमानसैः।
श्रूयतां नाट्यवेदस्य सम्भवो ब्रह्मनिर्मितः ॥ ७ ॥

नाट्यवेदकी कथाके सम्बन्धमें मुनियों की यह बात सुनकर भरतमुनि कहने लगे कि आप सब पवित्र होकर अत्यन्त सावधान चित्तसे सुनिए कि किस प्रकार ब्रह्माके द्वारा बनाया हुआ नाट्यवेद उत्पन्न हुआ ॥ ६-७ ॥

पूर्वं कृतयुगे विप्रा वृत्ते स्वायम्भुवेऽन्तरे।
त्रेतायुगेऽथ सम्प्राप्ते मनोर्वैवस्वतस्य च ॥ ८ ॥
ग्राम्यधर्मप्रवृत्ते तु कामलोभवशं गते।
ईर्ष्याक्रोधाभिसंमूढे लोके सुखितदुःखिते ॥ ६ ॥
देवदानवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगैः ।
जम्बूद्वीपे समाक्रान्ते लोकपालप्रतिष्ठिते ॥ १० ॥
महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः।
क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यञ्च यद् भवेत्॥ ११ ॥
न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्मात् सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम् ॥ १२ ॥

हे ब्राह्मणो! बहुत पहले जब सत्ययुगका स्वायम्भुव मन्वन्तर बीत चुका तब त्रेतायुगके प्रारम्भमें वैवस्वत मन्वन्तर आरम्भ हुआ और सभी लोग असभ्यताके काम करने लगे, कामी, लोभी, ईर्ष्यालु और क्रोधी होकर सुख-दुःखमें लीन हो गए, लोकपालोंसे परिपालित जम्बूद्वीप पर देव, दानव, यक्ष, राक्षस और महानागोंने अपना अधिकार जमा लिया। उस समय इन्द्र आदि देवताओंने ब्रह्माजीके पास पहुंचकर कहा कि हम लोग कोई ऐसा खेल चाहते हैं जो देखा भी जा सके और सुना भी जा सके। क्यों कि जितने भी वैदिकधर्म हैं वे शूद्र जातियोंको सुनाए नहीं जा सकते। इस लिये आप एक ऐसा नया पांचवा वेद रचिए जिसमें सब वर्ण भाग ले सकें ॥ ८-१२ ॥

एवमस्त्विति तानुक्त्वा देवराजं विसृज्य च।
सस्मार चतुरो वेदान् योगमास्थाय तत्त्ववित् ॥ १३ ॥

धर्म्यमर्थ्यं यशस्यञ्च सोपदेशं ससङ्ग्रहम् ।
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम् ॥ १४ ॥
सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रदर्शकम् ।
नाट्यसंज्ञमिमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम् ॥ १५ ॥

तब ब्रह्माजीने उनसे कहा—अच्छी बात है । इस प्रकार इन्द्रको बिदा देकर सब तत्त्वोंके जानने वाले ब्रह्माजीने ध्यान लगाकर चारो वेदों को स्मरण किया और सङ्कल्प किया कि मैं धर्मसम्मत अर्थ और यश देनेवाला, उपदेशपूर्ण, मनोविनोद-युक्त, आगे होने वाले संसारको सब कामोंमें मार्ग दिखलाने वाला, सब शास्त्रोंके अर्थोंसे भरा हुआ, सब प्रकारके शिल्पोंका ज्ञान कराने वाला तथा इतिहाससे युक्त यह नाट्यनामका वेद रचता हूँ ॥ १३-१५ ॥

एवं सङ्कल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन् ।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम् ॥ १६ ॥
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥ १७ ॥
वेदोपवेदैः सम्बद्धो नाट्यवेदो महात्मना ।
एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा ललितात्मकः ॥ १८ ॥
उत्पाद्य नाट्यवेदं तु ब्रह्मोवाच सुरेश्वरम् ।
इतिहासो मया दृष्टः स सुरेषु नियुज्यताम् ॥ १९ ॥
कुशला ये विदग्धाश्च प्रगल्भाश्च जितश्रमाः ।
तेष्वयं नाट्यसंज्ञो हि वेदः सङ्क्राम्यतां त्वया ॥ २० ॥

इस प्रकार सङ्कल्प करके सब वेदोंको स्मरण करते हुए ब्रह्माजीने चारो वेदोंके अङ्गोंसे उत्पन्न नाट्यवेदकी रचना की । उन्होंने पाठ्यभाग (कथा, भाषा, संवाद-शैली) ऋग्वेदसे लिया, गीत सामवेदसे लिया, अनेक प्रकारके अभिनय यजुर्वेदसे लिए और अथर्ववेदसे रस (शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, वत्सल, भयानक, बीभत्स और अद्भुत) लिए । इस प्रकार महात्मा ब्रह्माजीने वेदों और उपवेदोंसे सम्बद्ध और सुन्दरताओंसे भरा हुआ नाट्यवेद उत्पन्न किया और नाट्यवेदकी सृष्टि करके ब्रह्माजीने इन्द्रसे कहा कि मैंने जो इतिहास देखा है वह तो आप देवताओंको समझा दीजिए और जो लोग कुशल, चतुर, बुद्धिमान और परिश्रमी हों उन्हें यह नाट्यनामका वेद समझा दीजिए ॥ १६-२० ॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् शक्रो ब्रह्मणा यदुदाहृतम् ।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा प्रत्युवाच पितामहम् ॥ २१ ॥
ग्रहणे धारणे ज्ञाने प्रयोगे चास्य सत्तम ।
अशक्ता भगवन् देवा अयोग्या नाट्यकर्मणि ॥ २२ ॥
य इमे वेदगुह्यज्ञा मुनयः संशितव्रताः ।
एतेऽस्य ग्रहणे शक्ताः प्रयोगे धारणे तथा ॥ २३ ॥

ब्रह्माजी की बातें सुनकर इन्द्र भगवान ने हाथ जोड़ कर शिर झुकाकर ब्रह्माजीसे कहा—हे भगवन् इस नाट्यशास्त्रको सीखना, समझना, भलीभाँति जानना तथा खेलना देवताओंके वशकी बात नहीं है और नाट्यके काममें वे कुछ करभी नहीं सकते। ये जो वेदका भेद जानने वाले संयमी मुनि लोग हैं वे नाट्यवेदको सीखने, समझने और खेलनेमें अधिक समर्थ हैं ॥ २१-२३ ॥

श्रुत्वा तु शक्रवचनं मामाहाम्बुजसम्भवः ।
त्वं पुत्रशतसंयुक्तः प्रयोक्ताऽस्य भवानघ ॥ २४ ॥

इन्द्रकी बात सुनकर मुझसे (भरतसे) ब्रह्माजीने कहा—हे पुण्यशील ! आप अपने सौ पुत्रोंको लेकर इस नाट्यवेदके संचालक बनिये ॥ २४ ॥

आज्ञापितो विदित्वाऽहं नाट्यवेदं पितामहात् ।
पुत्रानध्यापयं योग्यान् प्रयोगं चास्य तत्त्वतः ॥ २५ ॥
शाण्डिल्यञ्चापि वात्स्यं च कोहलं दत्तिलं तथा ।
जटिलाम्बष्ठकौ चैव ताण्डुमग्निशिखं तथा ॥ २६ ॥
सैन्धवं सपुलोमानं शाड्वलिं विपुलं तथा ।
बन्धलं भक्तकं चैव मुष्टिकं सैन्धवायनम् ॥ २७ ॥
कपिञ्जलिं बादरिं च यमधूम्रायणौ तथा ।
जम्बुध्वजं काकजङ्घं स्वर्णकं तापसं तथा ॥ २८ ॥
केदारं शालिकर्णं च दीर्घगात्रं च शालिकम् ।
कौत्सं ताण्डायनिं चैव पिङ्गलं छत्रकं तथा ॥ २९ ॥
[बन्धुलं भल्लकञ्चैव मुष्टिकं सैन्धवायनम् ।]
तैतिलं भार्गवं चैव शुचिं बहुलमेव च ॥ ३० ॥
अबुधं बुधसेनं च पाण्डुकर्णं [illegible]

ऋजुकं मण्डकञ्चैव शम्बरं वञ्जुलं तथा ॥ ३१ ॥
मागधं सरलञ्चैव कर्तारं चोग्रमेव च ।
तुषादं पार्षदं चैव गौतमं बादरायणिम् ॥ ३२ ॥
विशालं शबलं चैव सुनाभं मेषमेव च ।
कर्त्तराक्षं हिरण्याक्षं कुशलं दुःसहं तथा ॥ ३३ ॥
जालं भयानकं चैव बीभत्सं सविचक्षणम् ।
कालियं भ्रमरं चैव तथा पीठमुखं मुनिम् ॥ ३४ ॥
तरुकुट्टाश्मकुट्टौ च षट्पदं सोत्तमं तथा ।
पादुकोपानहौ चैव श्रुतिकं षट्स्वरं तथा ॥ ३५ ॥
अग्निकुण्डाज्यकुण्डौ च विताण्ड्यं ताण्ड्यमेव च ।
पुण्डाक्षं पुण्डनासं च असितं सितमेव च ॥ ३६ ॥
विद्युज्जिह्वं महाजिह्वं शालङ्कायनमेव च ।
श्यामायनं माठरं च लोहिताङ्गं तथैव च ॥ ३७ ॥
संवर्त्तकं पञ्चशिखं त्रिशिखं शिखमेव च ।
शङ्खं वर्णमुखं षण्डं शङ्कुकर्णमथापि च ॥ ३८ ॥
शक्रनेमिं गभस्तिं चाप्यंशुमालिं शठं तथा ।
विद्युतं शातजङ्घं च रौद्रवीरमथापि च ॥ ३९ ॥

आज्ञा पाकर मैंने ब्रह्माजीसे नाट्यवेद सीखा और फिर पूरे तत्त्वके साथ अपने योग्यपुत्रोंको सिखाया जिनके नाम ये हैं—

शाण्डिल्य, वात्स्य, कोहल, दन्तिल, जटुल, अम्बष्ठक, ताण्डु, अग्निशिख, सैन्धव, पुलोमा, शाड्वलि, विपुल, बन्धल, भक्तक, मुष्टिक, सैन्धवायन, कपिञ्जलि, बादरि, यम, धूम्रायण, जम्बुध्वज, काकजङ्घ, स्वर्णक, तापस, केदार, शालिकर्ण, दीर्घगात्र, शालिक, कौत्स, ताण्डायनि, पिंगल, छत्रक, तैतिल, भार्गव, शुचि, बहुल, अबुध, बुधसेन, पाण्डुकर्ण, सुकेरल, ऋजुक, मण्डक, शम्बर, वञ्जुल, मागध, सरल, कर्ता, उग्र, तुषाद, पार्षद, गौतम, बादरायणि, विशाल, शबल, सुनाभ, मेष, कर्तराक्ष, हिरण्याक्ष, कुशल, दुःसह, जाल, भयानक, बीभत्स, विचक्षण, कालिय, भ्रमर, पीठमुख, मुनि, तरुकुट्ट, अश्मकुट्ट, षट्पद, उत्तम, पादुक, उपानह, श्रुतिक, षट्स्वर, अग्निकुण्ड, आज्यकुण्ड, विताण्ड्य, ताण्ड्य, पुण्डाक्ष, पुण्डनास,

असित, सित, विद्युज्जिह्व, महाजिह्व, शालङ्कायन, श्यामायन, माठर, लोहिताङ्ग, संवर्तक, पंचशिख, त्रिशिख, शिख, शङ्ख, वर्णमुख, षण्ड, शङ्कुकर्ण, शक्रनेमि, गभस्ति, अंशुमालि, शठ, विद्युत, शातजङ्घ, रौद्रवीर ॥ २५–३९ ॥

पितामहाज्ञयाऽस्माभिर्लोकस्य च गुणेप्सया ।
प्रयोजितं पुत्रशतं यथाभूमिविभागशः ॥ ४० ॥
यो यस्मिन् कर्मणि तथा योग्यस्तस्मिन् स योजितः ।

इस प्रकार ब्रह्माजीकी आज्ञासे हमने संसारको गुण प्राप्त हो इस इच्छासे सौ पुत्रोंमें कामका बटवारा करके जो जिस कामके योग्य था उसे उसमें लगा दिया ॥

भारतीं सात्वतीं चैव वृत्तिमारभटीं तथा ॥ ४१ ॥
समाश्रितः प्रयोगस्तु प्रयुक्तो वै महाद्विजाः ।
परिगृह्य प्रणम्याथ ब्रह्मा विज्ञापितो मया ॥ ४२ ॥
अथाऽऽह मां सुरगुरुः कैशिकीमपि योजय ।
यच्च तस्याः क्षमं द्रव्यं तद् ब्रूहि द्विजसत्तम ॥ ४३ ॥

हे सद्विप्रो! भारती, सात्वती और आरभटी वृत्तियोंका आश्रय लेकर मैंने यह खेल रचा है और इसे लेकर मैंने ब्रह्माजीको प्रणाम करके उन्हें सब बताया। उस पर बृहस्पतिजी बोले कि इसमें कैशिकी वृत्ति भी जोड़ दो और उसके लिए जो वस्तु आवश्यक हो वह हमें बता दो ॥ ४१–४३ ॥

एवं तेनास्म्यभिहितः प्रत्युक्तश्च मया प्रभुः ।
दीयतां भगवन् द्रव्यं कैशिक्याः सम्प्रयोजकम् ॥ ४४ ॥
मृदङ्गहारसम्पन्ना रसभावक्रियात्मिका ।
दृष्टा मया भगवतो नीलकण्ठस्य नृत्यतः ॥ ४५ ॥
कैशिकी श्लक्ष्णनेपथ्या श्रृङ्गाररससम्भवा ।
अशक्या पुरुषैः सा तु प्रयोक्तुं स्त्रीजनादृते ॥ ४६ ॥
ततोऽसृजन् महातेजा मनसाऽप्सरसो विभुः ।
नाट्यालङ्कारचतुराः प्रादान्मह्यं प्रयोगतः ॥ ४७ ॥
मञ्जुकेशीं सुकेशीं च मिश्रकेशीं सुलोचनाम् ।
सौदामिनीं देवदत्तां देवसेनां मनोरमाम् ॥ ४८ ॥
सुदतीं सुन्दरीं चैव विदग्धां विपुलां तथा ।

सुमालां सन्ततिं चैव सुनन्दां सुमुखीं तथा ॥ ४९ ॥
मागधीमर्जुनीं चैव सरलां केरलां धृतिम्।
नन्दां सपुष्कलां चैव कलभां चैव मे ददौ ॥ ५० ॥
स्वातिर्भाण्डे नियुक्तस्तु सह शिष्यैः स्वयम्भुवा।
नारदाद्याश्च गन्धर्वा नाट्ययोगे नियोजिताः ॥ ५१ ॥

उनकी बात सुनकर मैंने उनसे कहा कि कैशिकी वृत्तिके प्रयोग की सब सामग्री दे दीजिए। मैंने भगवान शङ्करके नृत्यसे देखा है कि कैशिकी वृत्ति कोमल अङ्गहारोंसे युक्त, रस, भाव और क्रियासे भरी हुई, सुन्दर सजावट वाली शृङ्गार रससे उत्पन्न हुई है। इसलिए स्त्रियोंके बिना इसका प्रयोग पुरुषोंके बसका नहीं है। तब ब्रह्माजीने अपने मनसे अत्यन्त तेज वाली ऐसी अप्सराएं उत्पन्न करके मुझे दीं जो नाट्यकी सुन्दरताओं को भली भाँति समझती थीं। उनके नाम मञ्जुकेशी, सुकेशी, मिश्रकेशी, सुलोचना, सौदामिनी, देवदत्ता, देवसेना, मनोरमा, सुदती, सुन्दरी, विदग्धा, विपुला, सुमाला, सन्तति, सुनन्दा, सुमुखी, मागधी, अर्जुनी, सरला, केरला, धृति, नन्दा, पुष्कला और कलभा हैं। इनके अतिरिक्त ब्रह्माजीने शिष्योंके सहित स्वातिको भाण्ड (पणव-मृदङ्ग-झल्लरी) आदि बाद्य के और नारद आदि गन्धर्वों को नाट्यके काममें लगा दिया ॥ ४४-५१ ॥

भावनाट्यमिदं सम्यग् बुद्ध्वा सर्वैः सुतैः सह।
स्वातिनारदसंयुक्तो वेदवेदाङ्गकारणम् ॥ ५२ ॥
उपस्थितोऽहं लोकेशं प्रयोगार्थं कृताञ्जलिः।
नाट्यस्य ग्रहणं प्राप्तं ब्रूहि किं करवाण्यहम् ॥ ५३ ॥

उसके बाद स्वाति, नारद तथा अपने सब पुत्रोंके साथ वेद-वेदाङ्गसे उत्पन्न इस भाव नाट्यको भली भाँति समझकर मैं हाथ जोड़कर लोकेश ब्रह्माजीके पास खेल उपस्थित करनेके लिए पहुंचा और बोला कि मैंने नाट्यको सीख लिया है अब बतलाइए कि मैं क्या करूँ ॥ ५२-५३ ॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच पितामहः।
महानयं प्रयोगस्य समयः समुपस्थितः ॥ ५४ ॥
अयं ध्वजमहः श्रीमान् महेन्द्रस्य प्रवर्तते।
अत्रेदानीमयं वेदो नाट्यसंज्ञः प्रयुज्यताम् ॥ ५५ ॥

यह सुनकर ब्रह्माजी बोले—नाट्य दिखलाने का बड़ा अच्छा अवसर भी आ गया है। अभी भगवान इन्द्र का ध्वज-महोत्सव होने वाला है इसलिए अभी यहीं पर नाट्य नामके वेदका प्रदर्शन कर डालो ॥ ५४-५५ ॥

ततस्तस्मिन् ध्वजमहे निहतासुरदानवे।
प्रहृष्टामरसंकीर्णे महेन्द्रविजयोत्सवे ॥ ५६ ॥
पूर्वं कृता मया नान्दी आशीर्वचनसंयुता।
अष्टाङ्गपदसंयुक्ता विचित्रा देवसंमता ॥ ५७ ॥
तदन्तेऽनुकृतिर्बद्धा यथा दैत्याः सुरैर्जिताः।
सम्फेटविद्रवकृता छेद्यभेद्याहवात्मिका ॥ ५८ ॥
ततो ब्रह्मादयो देवाः प्रयोगपरितोषिताः।
प्रददुर्हृष्टमनसः सर्वोपकरणानि नः ॥ ५९ ॥

तब राक्षसों और दानवोंके मारे जाने पर देवताओंने प्रसन्न होकर जो महेन्द्र-विजयोत्सवके उपलक्ष्यमें ध्वजमहोत्सव मनाया था उसमें तो मैंने आशीर्वादके साथ सुन्दर नान्दी पाठ किया जिसमें आठो अंगोंके पद थे और जिसका देवताओं ने भी समर्थन किया था। उसके पश्चात् हमने संफेट (रोषभरे वाक्य) और विद्रव (शंका, भय, और त्रास भरे वाक्य) करनेवाली मार-काटकी पुकारसे भरी हुई उस घटना का ठीक वैसेही अनुकरण किया जैसे देवताओंने दैत्यों को जीतनेमें की थी। उस नाटकसे संतुष्ट होकर ब्रह्मा आदि देवताओंने प्रसन्नताके साथ सब सामग्री हमें देदी ॥ ५६-५९ ॥

प्रीतस्तु प्रथमं शक्रो दत्तवान् स्वध्वजं शुभम्।
ब्रह्मा कमण्डलुञ्चैव भृङ्गारं वरुणस्तथा ॥ ६० ॥
सूर्यश्छत्रं शिवः सिद्धिं वायुर्व्यजनमेव च।
विष्णुः सिंहासनं चैव कुबेरो मुकुटं तथा ॥ ६१ ॥
श्राव्यत्वं प्रेक्षणीयस्य ददौ देवी सरस्वती।
शेषा ये देवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ ६२ ॥
तस्मिन् सदस्यभिप्रेतान् नानाजातिगुणाश्रयान्।
अंशांशैर्भाषितान् भावान् रसान् रूपबलं क्रियाम् ॥ ६३ ॥
दत्तवन्तः प्रहृष्टास्ते मत्सुतेभ्यो दिवौकसः।

प्रसन्न होकर सबसे पहले इन्द्रने शुभ कल्याण देने वाले अपने ध्वजको दिया

ब्रह्माजीने कमण्डलु, वरुणने भृङ्गार (स्वर्णपात्र-झारी), सूर्यने छत्र, शिवजीने सिद्धि, वायुने पंखा, विष्णुने सिंहासन, कुबेरने मुकुट, सरस्वती जीने सुनने की योग्यता तथा अन्यदेव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग आदिने उस समय अपनी अपनी इच्छा के अनुसार अनेक जाति और गुणसे युक्त तथा अपने-अपने अंशसे भर पूर भाव, रस, रूप, बलि या बल और क्रिया हमारे पुत्रों को प्रदान की ॥ ६०-६३½ ॥

एवं प्रयोगे प्रारब्धे दैत्यदानवनाशने ॥ ६४ ॥
अभवन् क्षुभिताः सर्वे दैत्या ये तत्र संगताः ।
विरूपाक्षपुरोगास्तु विघ्नान् प्रोत्साह्य तेऽब्रुवन् ॥ ६५ ॥
नेत्थमिष्यामहे नाट्यमेतदागम्यतामिति ।
ततस्तैरसुरैः सार्धं विघ्नमायामुपाश्रिताः ॥ ६६ ॥
वाचश्चेष्टां स्मृतिं चैव स्तम्भयन्ति स्म नृत्यताम् ।

इस प्रकार जब दैत्यदानवनाशन नाम का नाटक प्रारम्भ हुआ तो जितने दैत्य वहाँ आए थे वे सब बड़े रुष्ट हुए और विरूपाक्षके नेतृत्वमें विघ्न प्रारम्भ करके बोले—

'हम नहीं चाहते ऐसा नाटक, चलो, यहाँसे निकल चला जाय।' यह कहकर उन लोगोंने असुरोंके साथ मिलकर ऐसी विघ्न माया चलाई कि नृत्य करने वालों की बोली बन्द हो गई तथा हाथ, पैर, बंध गए और पाठ विस्मृत हो गया ॥ ६४-६६½ ॥

तथा विध्वंसनं दृष्ट्वा तत्र तेषां स देवराट् ॥ ६७ ॥
कस्मात् प्रयोगवैषम्यमित्युक्त्वा ध्यानमाविशत् ।
अथापश्यत् तदा विघ्नैः समन्तात् परिवारितम् ॥ ६८ ॥
सहेतरैः सूत्रधारं नष्टसंज्ञं जडीकृतम् ।
उत्थाय त्वरितं शक्रः क्रोधाज्जग्राह तं ध्वजम् ॥ ६९ ॥
सर्वरत्नोज्ज्वलन्तं तु किञ्चिदुद्वृत्तलोचनः ।
रङ्गपीठगतान् विघ्नानसुरांश्चैव देवराट् ॥ ७० ॥
जर्जरीकृतदेहांस्तानकरोज्जर्जरेण सः ।
निहतेषु च सर्वेषु विघ्नेषु सह दानवैः ॥ ७१ ॥
संप्रहृष्य ततो वाक्यमाहुः सर्वे दिवौकसः ।
अहो प्रहरणं दिव्यमिदमासादितं त्वया ॥ ७२ ॥

नाट्यविध्वंसिनः सर्वे येन ते जर्जरीकृताः ।
तस्माज् जर्जर इत्येव नामतोऽयं भविष्यति ॥ ७३ ॥
शेषा ये चैव हिंसार्थमुपयास्यन्ति हिंसकाः ।
दृष्ट्वैव जर्जरं तेऽपि गमिष्यन्त्येवमेव तु ॥ ७४ ॥
एवमेवास्त्विति ततः शक्रः प्रोवाच तान् सुरान् ।
रक्षाभूतश्च सर्वेषां भविष्यत्येव जर्जरः ॥ ७५ ॥

उनका इस प्रकार का उत्पात देखकर देवराज इन्द्र सोचने लगे कि यह सब बाधाएँ कहाँसे आ पहुंचीं । उन्होंने ध्यान लगाकर देखा कि अनेकों विघ्नोंने सूत्रधारको चारो ओरसे घेरकर उसकी चेतना हरली है और उसे जड़कर दिया है । यह देखकर इन्द्रको बड़ा क्रोध आया । उन्होंने झट क्रोधसे सब रत्नोंसे जगमगाते हुए वहाँके ध्वजको उखाड़ लिया और कुछ ऊपर देखते हुए इन्द्रने उस जर्जरसे रंगपीठ पर आये हुए सब विघ्नोंको मार-मार कर उनका कचूमर निकाल दिया । जब सभी दानव और विघ्न मार-मार कर भगा दिए गए तब सब देवताओंने प्रसन्न होकर कहा कि आपने तो यह एक नया ही शस्त्र निकाल डाला । आपने जो इससे नाट्यमें उत्पात करने वालोंको जर्जर किया है, पछाड़ा है इसलिए इस ध्वज का नाम आजसे जर्जर पड़ जायगा । और भी जो कोई हिंसक यहाँ मारकाट मचाने या विघ्न डालने आवेंगे वे भी जर्जर को देखकर इसी प्रकार भाग जायेंगे । इस पर इन्द्रने उन देवताओंसे कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो, आजसे यह जर्जर सबका रक्षक बनकर रहेगा' ॥ ६७-७५ ॥

प्रयोगे प्रस्तुते ह्येवं स्फीते शक्रमहे पुनः ।
त्रासं सञ्जनयन्ति स्म विघ्ना मद्वधबुद्धयः ॥ ७६ ॥
दृष्ट्वा तेषां व्यवसितं मदर्थे विप्रकारजम् ।
उपस्थितोऽहं ब्रह्माणं सुतैः सर्वैः समन्वितः ॥ ७७ ॥
निश्चिता भगवन् विघ्ना नाट्यस्यास्य विनाशने ।
अस्य रक्षाविधिं सम्यगाज्ञापय सुरेश्वर ! ॥ ७८ ॥
ततः स विश्वकर्माणं ब्रह्मोवाच प्रयत्नतः ।
कुरु लक्षणसम्पन्नं नाट्यवेश्म चकार सः ॥७९ ॥
कृत्वा यथोक्तमेवं तु गृहं पद्मोद्भवाज्ञया ।

प्रोक्तवान् द्रुहिणं गत्वा सभायां तु कृताञ्जलिः ॥ ८० ॥
सज्जं नाट्यगृहं देव तद्वेक्षितुमर्हसि ।
ततः सह महेन्द्रेण सुरैः सर्वैश्च सत्तमैः ॥ ८१ ॥
आगच्छत् त्वरितो द्रष्टुं द्रुहिणो नाट्यमण्डपम् ।

फिर भी जब जब इन्द्रकी पूजाके लिए नाट्यके प्रयोग बड़े धूम धामसे होने लगते थे तब तब ये सब मुझ (भरत) को मारने की इच्छा वाले विघ्नकारी आ-आकर बड़ी बाधा उत्पन्न करते थे। अपने काममें इनका यह उत्पात देखकर मैं अपने सब पुत्रोंके साथ ब्रह्माजीके पास पहुंचा और उनसे कहा—'हे देवताओंके स्वामी! उत्पातियोंने नाटक उखाड़ने का निश्चय कर लिया है। इसलिए कोई ऐसी विधि बताइए जिससे इसकी रक्षा हो सके, इस पर ब्रह्माजीने विश्वकर्मासे कहा—बड़ी सावधानी और कौशलसे सब लक्षणोंसे भरीपुरी नाट्यशाला बनाइए। फिर ब्रह्माजी ने विश्वकर्मा को जैसा बताया वैसा नाट्यगृह विश्वकर्माने बना दिया और बनाकर ब्रह्माजी की सभामें जाकर हाथ जोड़कर बोले—'देव! मैंने नाट्यगृह ठीक कर दिया है। चलकर उसे देख लीजिए।' यह सुनकर ब्रह्माजी इन्द्र तथा अन्य सब श्रेष्ठतम देवताओंके साथ शीघ्रही नाट्यमण्डप देखने आए ॥ ७६–८१½ ॥

दृष्ट्वा नाट्यगृहं ब्रह्मा प्राह सर्वान् सुरांस्ततः ॥ ८२ ॥
अंशभागैर्भवद्भिस्तु रक्ष्योऽयं नाट्यमण्डपः ।
रक्षणे मण्डपेऽस्याथ नियुक्तो रजनीकरः ॥ ८३ ॥
लोकपालास्तथा दिक्षु विदिक्ष्वपि च मारुताः ।
नेपथ्यभूमौ मित्रस्तु निक्षिप्तो वरुणोऽम्बरे ॥ ८४ ॥
वेदिकारक्षणे वह्निर्भाण्डे सर्वदिवौकसः ।
वर्णाश्चत्वार एवाथ स्तम्भेषु विनियोजिताः ॥ ८५ ॥
आदित्याश्चैव रुद्राश्च स्थिताः स्तम्भान्तरेष्वथ ।
धरणीषु स्थिता भूताः शालास्वप्सरसस्तथा ॥ ८६ ॥
सर्ववेश्मसु यक्षिण्यो महीपृष्ठे महोदधिः ।
द्वारशालानियुक्तस्तु कृतान्तः काल एव च ॥ ८७ ॥
स्थापितौ द्वारपार्श्वे तु नागराजौ महाबलौ ।
देहल्यां यमदण्डस्तु शूलं तस्योपरि संस्थितम् ॥ ८८ ॥

द्वारपालौ स्थितौ चोभौ नियतिर्मृत्युरेव च।
पार्श्वे तु रङ्गपीठस्य महेन्द्रः स्थितवान् स्वयम् ॥ ८६ ॥
स्थापिता मत्तवारण्यां विद्युद् दैत्यनिषूदिनी।
स्तम्भेषु मत्तवारण्याः स्थापिताः परिपालने ॥ ९० ॥
भूता यक्षाः पिशाचाश्च गुह्यकाश्च महाबलाः।
जर्जरे चैव निक्षिप्तं वज्रं दैत्यनिबर्हणम् ॥ ९१ ॥
तत्पर्वसु च निक्षिप्ताः सुरेन्द्रा ह्यमितौजसः।
शिरःपर्वस्थितो ब्रह्मा, द्वितीये शङ्करस्तथा ॥ ९२ ॥
तृतीये च स्थितो विष्णुश्चतुर्थे स्कन्द एव च।
पञ्चमे च महानागाः शेषवासुकितक्षकाः ॥ ९३ ॥
एवं विघ्नविनाशाय स्थापिता जर्जरे सुराः।
रङ्गपीठस्य मध्ये तु स्वयं ब्रह्मा प्रतिष्ठितः ॥ ९४ ॥
इत्यर्थं रङ्गमध्ये तु क्रियते पुष्पमोक्षणम्।

नाट्यगृहको देखकर ब्रह्माने सब देवताओंसे कहा कि आप लोगोंको अपने अपने दैवी अंशोंसे कुछ भाग देकर इसकी रक्षा करनी चाहिए। इस मण्डप की रक्षाका भार चन्द्रमा को दिया जाता है। इसके चारों ओर की दिशाओं की रक्षा के लिए लोकपाल और विदिशाओं की रक्षाके लिए मरुतदेव नियुक्त किए जाते हैं। इसकी नेपथ्य भूमि (अभिनेताओंके शृंगार का स्थान) की रक्षाके लिए सूर्य, और आकाश की रक्षाके लिए वरुण नियुक्त किए जाते हैं। वेदीकी रक्षा तो अग्नि करेंगे। सब देवगण भाण्ड (वाद्य यन्त्रों) की रक्षा करें। चारों वर्णोंके अधिष्ठाता लोग खम्भों की रक्षा करें। बारहों आदित्य और ग्यारहों रुद्र खम्भोंके मध्यमें स्थित किए जाते हैं। यहाँ की पृथ्वीमें पांचो भूत (क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर) स्थित किए जाते हैं। शालाओं (कक्षों) में अप्सरायें स्थित हैं, और सब घरोंमें यक्षिणियाँ, यहाँ की भूमिके पीछे सागर और द्वारशाला पर स्वयं काल नियुक्त किए गए हैं। द्वारके दोनों ओर महाबलशाली तक्षक और वासुकि नामके नागराज स्थापित किए गए हैं। देहली पर यमदण्ड और ऊपर शूल रखा गया है। नियति (भाग्य) और मृत्यु ये दोनों द्वारपाल बनाए गए हैं। रङ्गपीठके पास स्वयं महेन्द्र स्थित हैं। रङ्गपीठके ऊपर अम्बारी (मत्तवारणी) में दैत्यों का नाश करने वाली बिजली स्थापित की गई है। मत्तवारणी की रक्षाके लिए

महाबली भूत, यक्ष, पिशाच और गुह्यक स्थापित किए गए हैं। और जर्जरमें दैत्यों का नाश करने वाला वज्रही स्थापित कर दिया गया है। जर्जरके डण्डे की पोरोंमें असीम शक्ति वाले बड़े बड़े देवता स्थापित हैं। शिरेकी पोरमें ब्रह्मा, दूसरेमें शंकर, तीसरेमें भगवान विष्णु, चौथेमें स्कन्द, पाँचवेंमें शेषनाग, वासुकि और तक्षक नामके बड़े बड़े नाग स्थापित हैं। इस प्रकार विघ्नों का विनाश करनेके लिए जर्जरमें सब देवता स्थापित किए गए हैं। और रङ्गपीठके मध्यमें तो स्वयं ब्रह्माजी ही प्रतिष्ठित हैं। इसीलिए रङ्गपीठके बीचमें फूल चढ़ाने का विधान है ॥ ८२-९४३ ॥

पातालवासिनो ये च यक्षगुह्यकपन्नगाः ॥ ६५ ॥
अधस्ताद् रङ्गपीठस्य रक्षणे विनियोजिताः ।
नायकं रक्षतीन्द्रस्तु नायिकां तु सरस्वती ॥ ६६ ॥
विदूषकमथोङ्कारः शेषास्तु प्रकृतीर्हरः ।
यान्येतानि नियुक्तानि दैवतानीह रक्षणे ॥ ६७ ॥
एतान्येवाधिदैवानि भविष्यन्तीत्युवाच सः ।

जितने पातालके वासी यक्ष, गुह्यक और पन्नग आदि हैं वे सब रङ्गपीठके नीचेके भाग की रक्षाके लिए नियुक्त किए गये हैं। नायक की रक्षा इन्द्र, नायिका की सरस्वती जी, विदूषक की ओंकार तथा अन्य सब लोगोंकी रक्षा महादेवजीके द्वारा होगी। यहां पर रक्षार्थ जो ये सब देव गण नियुक्त किये गये हैं, वे ही सब लोग अधिदैव अर्थात् विभिन्न प्रकार की रक्षा करने वाले देवता होंगे॥ ९५-९७३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवैः सर्वैरुक्तः पितामहः ॥ ६८ ॥
साम्ना तावदिमे विघ्नाः स्थाप्यन्तां वचसा त्वया ।
पूर्वं साम प्रयोक्तव्यं द्वितीयं दानमेव च ॥ ६६ ॥
तयोरुपरि भेदस्तु ततो दण्डः प्रयुज्यते ।

ब्रह्माजी की यह बात सुनकर सब देवताओंने ब्रह्माजीसे कहा कि आप पहले विघ्नों को सान्त्वना पूर्ण वाणीसे समझा दीजिए। क्योंकि पहले समझाना चाहिए फिर दान या द्रव्य देकर मनाना चाहिए फिरभी न माने तो उनमें फूट कराकर भेद नीतिसे काम निकालना चाहिए। इस परभी न माने तो दण्ड का क्रमसे प्रयोग करना चाहिए ॥ ९८-९९३ ॥

देवानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा विघ्नानुवाच ह ॥ १०० ॥
कस्माद् भवन्तो नाट्यस्य विनाशाय समुद्यताः ।
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा विरूपाक्षोऽब्रवीदिदम् ॥ १०१ ॥
दैत्यैर्विघ्नगणैः सार्धं साम पूर्वमिदं वचः ।
योऽयं भगवता सृष्टो नाट्यवेदः सुरेच्छया ॥ १०२ ॥
प्रत्यादेशोऽयमस्माकं सुरार्थं भवता कृतः ।
तन्नैतदेवं कर्तव्यं त्वया लोकपितामह ॥ १०३ ॥
यथा देवास्तथा दैत्यास्त्वत्तः सर्वे विनिर्गताः ।
विघ्नानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ १०४ ॥
अलं वो मन्युना दैत्या विषादं त्यजतानघाः ।
भवतां देवतानां च शुभाशुभविकल्पकः ॥ १०५ ॥
कर्मभावान्वयापेक्षो नाट्यवेदो मया कृतः ।
नैकान्ततोऽत्र भवतां देवानाञ्चानुभावनम् ॥ १०६ ॥
त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ।
क्वचिद् धर्मः क्वचित् क्रीडा क्वचिदर्थः क्वचिच्छ्रमः ॥ १०७ ॥
क्वचिद्धास्यं क्वचिद्युद्धं क्वचित् कामः क्वचिद्वधः ।

देवताओं की बात सुनकर ब्रह्माने उत्पातियोंसे कहा कि—आप लोग क्यों नाट्य कार्यको नष्ट करनेके लिये उपस्थित हुये हैं। ब्रह्माजी की यह बात सुन कर विरूपाक्षने दैत्यों और विघ्न गणोंके साथ-साथ मिलकर बड़ी शान्तिके साथ यह वचन ब्रह्माजीसे कहा कि—'देवताओं की इच्छासे आपने जो यह नाट्यवेद की सृष्टि की है, वही देवताओंके निमित्तसे हम लोगों का एक प्रकारसे आपने तिरस्कार ही किया है। जो लोकके पितामह होकर आपके लिये करना उचित न था। क्योंकि आप ही से सभों की सृष्टि हुई है अतः आपके लिये जैसे देवगण वैसे ही दैत्य गण दोनों एकसे हैं'। विघ्नों (विघ्नकर्त्ताओं) के इस प्रकार की बात सुन कर ब्रह्माजीने यह कहा कि हे भले दैत्यो! क्रोध को जाने दो, जीमें दुःखी मत हो। मैंने जो यह नाट्य वेद बनाया है वह तुम्हारे और देवताओंके अच्छे और बुरे कामों का विचार करने वाला और कर्म तथा भावके अनुसार परिणाम प्रदर्शन करनेवाला होगा। इसमें केवल आपका या केवल देवताओं का ही वर्णन नहीं

होगा। नाट्य तो तीनों लोकोंके भावों का वर्णन करने वाला है। इसमें कहीं धर्म है, कहीं खेल है, कहीं धन प्राप्ति की बात है, कहीं श्रम की कथा है, कहीं हास्य है, कहीं युद्ध है, कहीं काम है और कहीं वध है॥ १००-१०७½॥

धर्मो धर्मप्रवृत्तानां कामः कामोपसेविनाम्॥ १०८॥
निग्रहो दुर्विनीतानां विनीतानां दमक्रिया।
क्लीबानां धाष्टर्यजननमुत्साहः शूरमानिनाम्॥ १०९॥
अबुधानां विबोधश्च वैदुष्यं विदुषामपि।
ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्यं दुःखार्दितस्य च॥ ११०॥
अर्थोपजीविनामर्थो धृतिरुद्विग्नचेतसाम्।
नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्॥ १११॥
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्।
उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम्॥ ११२॥
हितोपदेशजननं धृतिक्रीडासुखादिकृत्।
एतद्रसेषु भावेषु सर्वकर्मक्रियास्वथ॥ ११३॥
सर्वोपदेशजननं नाट्यं लोके भविष्यति।
दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम्॥ ११४॥
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्॥ ११५॥
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।
न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला॥ ११६॥
[नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।]

धर्मात्माओंका धर्म, कामियोंका काम, उच्छृङ्खल लोगोंपर अंकुश, नम्रलोगोंका आत्मसंयम, नपुंसकोंको ढिठाई, वीर और मानियोंका उत्साह, मूर्खोंके लिए दिया गया उपदेश, विद्वानोंका पाण्डित्य, धनिकोंका राग-रङ्ग, दुःखियोंकी स्थिरता, पैसा कमानेवालोंकी अर्थलोलुपता, व्याकुल चित्तवालोंकी मनोवृत्ति आदि अनेक प्रकारके भावोंसे भरा हुआ, अनेक प्रकारकी अवस्थाओंसे युक्त, लोगोंके व्यवहारोंका अनुकरण इसमें है और जिसमें उत्तम-अधम और मध्यम श्रेणीके लोगोंके कार्य या आचरण दिखाये जाते हैं। ऐसा यह नाट्य मैंने बनाया है जो सबको हितकारी उपदेश देने वाला एवं धैर्य, क्रीडा तथा सुख आदिका करने वाला होगा और विभिन्न

प्रकारके रस, भाव तथा सब आचरण और क्रियाओंमें सबको ठीक मार्ग दिखाने वाला होगा और दुःख, श्रम तथा शोकसे आर्त्त बेचारे लोगोंको समयपर विश्रान्ति देने वाला भी होगा। यह नाट्य धर्म, यश, आयु और बुद्धि बढ़ाने वाला होनेसे हितकर है तथा सब लोगोंको इससे उपदेश प्राप्त होता है। कोई ऐसा ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म ऐसे नहीं हैं जो इस नाट्यवेदमें नहीं मिलते॥

सर्वशास्त्राणि शिल्पानि कर्माणि विविधानि च ॥ ११७ ॥
अस्मिन्नाट्ये समेतानि तस्मादेतन्मया कृतम् ।
तन्नात्र मन्युः कर्तव्यो भवद्भिरमरान् प्रति ॥ ११८ ॥
सप्तद्वीपानुकरणं नाट्यमेतद् भविष्यति ।
येनानुकरणं नाट्यमेतत्तद्यन्मया कृतम् ॥ ११९ ॥
देवानामसुराणाञ्च राज्ञामथ कुटुम्बिनाम् ।
ब्रह्मर्षीणाञ्च विज्ञेयं नाट्यं वृत्तान्तदर्शकम् ॥ १२० ॥
योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः ।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते ॥ १२१ ॥
वेदविद्येतिहासानामाख्यानपरिकल्पनम् ।
विनोदकरणं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ॥ १२२ ॥
श्रुतिस्मृतिसदाचारपरिशेषार्थकल्पनम् ।
विनोदजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ॥ १२३ ॥

मैंने सब शास्त्र, शिल्प और अनेक प्रकारका कर्म इस नाट्यमें एकत्र करके रख दिया है। इस लिए ऐसी अवस्थामें आप लोग देवताओं पर क्रोध न कीजिए। इस नाट्यमें सातों द्वीपोंका अनुकरण किया जा सकता है। देवता, असुर, राजा, गृहस्थ और ब्रह्मर्षि इन सबोंके वृत्तान्तोंका प्रदर्शक तथा किए हुए कार्योंका अनुकरण ही संसार में नाट्य कहा जाता है अर्थात् लोगों के सुख-दुःखसे भरे हुये जो वस्तुतः भाव होते हैं उन्हींको अङ्गादिके अभिनय द्वारा प्रकट करना नाट्यकला कहा जाता है और इसमें वेद, चौदहों विद्या, इतिहास और कथाओंका समावेश किया गया है। यह नाट्य समय समय पर मनोरंजन करने वाला होगा। इसमें श्रुति, स्मृति, सदाचार तथा अन्य सभी बातों का समावेश है॥ ११७–१२३॥

एतस्मिन्नन्तरे देवान् सर्वानाह पितामहः ।
क्रियतामद्य विधिवद् यजनं नाट्यमण्डपे ॥ १२४ ॥

बलिप्रदानैर्होमैश्च मन्त्रौषधिसमन्वितैः ।
जप्यैर्भक्ष्यैश्च पानैश्च बलिः समुपकल्प्यताम् ॥ १२५ ॥

इसके पश्चात् ब्रह्माजीने सब देवताओंसे कहा कि नाट्यकी विधिके अनुसार यज्ञ करो। बलिप्रदान, हवन, मन्त्र, ओषधि, जप, भक्ष्य (भोजन योग्य हविष्यान्नादि) तथा पान (पीने योग्य सोमरसादि) से बलि देनेकी व्यवस्था करो ॥ १२४-१२५॥

मर्त्यलोकेष्वयं वेदः शुभां पूजामवाप्स्यति ।
अपूजयित्वा रङ्गं तु नैव प्रेक्षां प्रवर्तयेत् ॥ १२६ ॥
अपूजयित्वा रङ्गं तु यः प्रेक्षां कल्पयिष्यति ।
तस्य तन्निष्फलं ज्ञानं तिर्यग्योनिश्च गच्छति ॥ १२७ ॥
यज्ञेन संमितं ह्येतद् रङ्गदैवतपूजनम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं नाट्ययोक्तृभिः ॥ १२८ ॥

मर्त्यलोकमें इस नाट्यवेदकी बड़ी पूजा होगी, रङ्गकी पूजा किए बिना नाट्य-प्रयोग नहीं देखा जासकता। जो रंगकी पूजा किए बिना नाटक दिखाता है उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है। और वह अगले जन्ममें तिर्यक् (पक्षी आदि) की योनिमें पड़ता है। यह रंग दैवतकी पूजा यज्ञके ही समान है। इसलिए नाट्यप्रयोक्ताको ठीक-ठीक विधानसे रङ्गपूजन करना चाहिए ॥ १२६-१२८ ॥

नर्तकोऽर्थपतिर्वापि यः पूजां न करिष्यति ।
न कारयिष्यत्यन्यैर्वा प्राप्नोत्यपचयं तु सः ॥ १२९ ॥
यथाविधि यथाशास्त्रं यस्तु पूजां करिष्यति ।
स लप्स्यते शुभानर्थान् स्वर्गलोकं च यास्यति ॥ १३० ॥
एवमुक्त्वा तु भगवान् द्रुहिणः सह दैवतैः ।
रङ्गपूजां कुरुष्वेति मामेवं समचोदयत् ॥ १३१ ॥

जो नर्तक या अभिनेता अथवा धनी (रङ्गशालाका स्वामी) रंगपूजा नहीं करता या नहीं कराता उसकी बड़ी हानि होती है। जो शास्त्रकी विधिके साथ पूजा करेगा वह सभी शुभ फल प्राप्त करेगा, और स्वर्गमें जायगा। ऐसा कहकर सब देवताओंके साथ ब्रह्माने मुझ (भरत) से कहा 'चलो, रङ्गपूजा करो'।

भारतीयनाट्यशास्त्रका शास्त्रोत्पत्तिनामक पहला अध्याय समाप्त हुआ।



अथ द्वितीयाध्यायः

भरतस्य वचः श्रुत्वा प्रत्यूचुर्मुनयस्तदा।
भगवन् श्रोतुमिच्छामो यजनं रङ्गसंश्रयम् ॥ १ ॥
अथवा याः क्रियास्तत्र लक्षणं यच्च पूजनम्।
भविष्यद्भिर्नरैः कार्यं कथं वै नाट्यवेश्मनि ॥ २ ॥
इहादिर्नाट्यवेदस्य कीर्तितो नाट्यमण्डपः।
तस्मात्तस्यैव तावत् त्वं लक्षणं वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

भरतकी बात सुनकर सब मुनि बोले—'भगवन् हम रङ्गसम्बन्धी यज्ञकी विधि सुनना चाहते हैं अथवा जो उसकी क्रियाएं हों, जो लक्षण हों, जैसे पूजन किया जाता हो तथा भविष्यमें लोग नाट्य-घरोंमें किस प्रकार पूजा करेंगे ? (यह सुनना चाहते हैं)। यह जो आपने नाट्यवेदके सर्वप्रथम नाट्यमण्डपका वर्णन किया है इसलिए आप इसीका लक्षण कृपा करके बताइए ॥ १-३ ॥

तेषां तु वचनं श्रुत्वा मुनीनां भरतोऽब्रवीत्।
लक्षणं पूजनं चैव श्रूयतां नाट्यवेश्मनः ॥ ४ ॥
दिव्यानां मानसी सृष्टिर्गृहेषूपवनेषु च।
नराणां यत्नतः कार्या लक्षणाभिहिताः क्रियाः ॥ ५ ॥

उन मुनियोंकी यह बात सुनकर भरत बोले—'नाट्यघरके लक्षण क्या हैं ? और पूजन कैसे करना चाहिए? यह मैं बताता हूँ' सुनो। देवता लोग अपने मनसे जैसा चाहें वैसा घर और उपवन बना सकते हैं किन्तु मनुष्योंको इन सब वस्तुओंके निर्माणमें यथानिर्दिष्ट लक्षणोंके अनुसार ही कार्य करना चाहिए ॥ ४-५ ॥

श्रूयतां तद्यथा तत्र कर्तव्यो नाट्यमण्डपः।
तस्य दैवतपूजा च यथा योज्या च वास्तुषु ॥ ६ ॥
इह प्रेक्षागृहाणां तु धीमता विश्वकर्मणा।
त्रिविधः सन्निवेशश्च शास्त्रतः परिकल्पितः ॥ ७ ॥
विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्र्यस्रश्चैव हि मण्डपः।
तेषां त्रीणि प्रमाणानि ज्येष्ठं मध्यं तथाऽवरम् ॥ ८ ॥

जिस प्रकारसे नाट्यमण्डप बनाना चाहिए और उसमें वासके दिन जैसे देवताओं की पूजा करनी चाहिए वह सब मैं बताता हूँ। सुनिए ?। बुद्धिमान

विश्वकर्माने शास्त्रके अनुसार तीन प्रकारके प्रेक्षागृहों या नाट्यशालाओं का विधान किया है। विकृष्ट, चतुरस्र और त्र्यस्र। इनके भी तीन रूप हैं—ज्येष्ठ, मध्यम और अधम ॥ ६-८ ॥

प्रमाणमेषां निर्दिष्टं हस्तदण्डसमाश्रयम् ।
शतं चाष्टौ चतुष्षष्टिर्द्वात्रिंशचेति निश्चितम् ॥ ६ ॥
अष्टाधिकं शतं ज्येष्ठं चतुष्षष्टिस्तु मध्यमम् ।
कनीयस्तु तथा वेश्म द्वात्रिंशत्करमिष्यते ॥ १० ॥
देवानां भवनं ज्येष्ठं नृपाणां मध्यमं भवेत् ।
शेषाणां प्रकृतीनां तु कनीयः संविधीयते ॥ ११ ॥

इनकी बड़ाई-छोटाई हाथ और दण्डसे नापके अनुसार क्रमशः एक सौ आठ, चौंसठ तथा बत्तीस हाथकी निश्चित की गई है। एक सौ आठ हाथका ज्येष्ठ, चौंसठ हाथका मध्यम और बत्तीस हाथका अधम नाट्यघर बनता है। वह देवताओंका ज्येष्ठ, राजाओंका मध्यम और शेष प्रजाजनोंका अधम होना चाहिये ॥ ९-११ ॥

प्रमाणं यच्च निर्दिष्टं लक्षणं विश्वकर्मणा ।
प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तच्चैवं हि निबोधत ॥ १२ ॥
अणू रजश्च बालश्च लिक्षा यूका यवस्तथा ।
अङ्गुलं चैव हस्तश्च दण्डश्च परिकीर्तितः ॥ १३ ॥

इन सब नाट्यघरोंके नापका जो आधार और उसका जो लक्षण विश्वकर्माने बताया है वह सुनिए—अणु, रज, बाल, लिक्षा, यूका, यव, अङ्गुल, हस्त और दण्ड ये (नापके आधार) बताए गए हैं ॥ १२-१३ ॥

अणवोऽष्टौ रजः प्रोक्तं तान्यष्टौ बाल उच्यते ।
बालास्त्वष्टौ भवेल्लिक्षा यूका लिक्षाष्टकं भवेत् ॥ १४ ॥
यूकास्त्वष्टौ यवः प्रोक्तः यवास्त्वष्टौ तथाङ्गुलम् ।
अङ्गुलानि तथा हस्तश्चतुर्विंशतिरुच्यते ॥ १५ ॥
चतुर्हस्तो भवेद्दण्डो निर्दिष्टस्तु प्रमाणतः ।
अनेनैव प्रमाणेन वक्ष्याम्येषां विनिर्णयम् ॥ १६ ॥

आठ अणुओंका एक रज, आठ रजोंका एक बाल, आठ बालोंकी एक लिक्षा, आठ लिक्षाओंकी एक यूका, आठ यूकाओंका एक यव, आठ यवोंका एक अङ्गुल, चौबीस अङ्गुलोंका एक हस्त और चार हस्तोंका एक दण्ड होता है। ये नापके

आधारोंके लक्षण हैं। और इन्हींके अनुसार मैं आगे विवरण दूँगा ॥ १४-१६ ॥

चतुष्षष्टिं करान् कुर्याद् दीर्घत्वेन तु मण्डपम् ।
द्वात्रिंशेन तु विस्तारं मर्त्यानां योजयेदिह ॥ १७ ॥
अत ऊर्ध्वं न कर्त्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः ।
अस्मादव्यक्तभावं हि तत्र नाट्यं भवेदिति ॥ १८ ॥

नाट्यमण्डप चौंसठ हाथोंका लम्बा होना चाहिए और बत्तीस हाथोंका चौड़ा। मर्त्यलोकवालोंको इतना ही लम्बा-चौड़ा नाट्यमण्डप बनाना चाहिए। इससे बड़ा नाट्यमण्डप नहीं बनाना चाहिए क्योंकि बड़ा कर देनेसे नाट्यका भाव स्पष्ट दिखाई या सुनाई नहीं देगा ॥ १७-१८ ॥

मण्डपे विप्रकृष्टे तु पाठ्यमुच्चारितस्वरम् ।
अनभिव्यक्तवर्णत्वाद् विस्वरत्वं भृशं भवेत् ॥ १९ ॥
यश्चाप्यस्य गतो रागो भावमूर्ध्निरसाश्रयः ।
स वेश्मनः प्रकृष्टत्वाद् व्रजेदव्यक्ततां पराम् ॥ २० ॥
प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तस्मान्मध्यममिष्यते ।
यस्माद्वाद्यं च गेयं च सुखं श्राव्यतरं भवेत् ॥ २१ ॥

बड़े नाट्यमण्डपमें जो कुछ पाठ्य या सम्वाद बोला जायगा वह वर्णोंके स्पष्ट न होनेके कारण (अधिक चिल्लानेसे) अत्यन्त बेसुरा हो जायगा। और अनेक भावों और रसोंसे युक्त जो मनोरंजन नाटकमें दिखाना है वह नाट्यघरके बड़े हो जानेसे अत्यन्त अस्पष्ट हो जायगा। इसीलिए सब प्रकारके नाट्यघरोंमें मध्यम ही श्रेष्ठ है। क्योंकि इसमें गाना-बजाना सब ठीकसे सुनाई पड़ता है ॥ १९-२१ ॥

देवानां मानसी सृष्टिर्गृहेषूपवनेषु च ।
यत्नभावाद् विनिष्पन्नाः सर्वे भावास्तु मानुषाः ॥ २२ ॥
तस्माद्देवकृतैर्भावैर्न विस्पर्धेत मानुषः ।
मनुष्यस्य तु गेहस्य संप्रवक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २३ ॥

देवता लोग अपने मनसे जैसे चाहें वैसे घर या उपवन बना सकते हैं किन्तु मनुष्योंको तो अपने सब भाव दिखानेके लिए बड़ा यत्न करना पड़ता है। इसलिए मनुष्योंको देवताओंकी बातोंसे होड़ नहीं करना चाहिए। इसलिए अब मैं मनुष्योंके योग्य रङ्गशालाके लक्षण बताता हूँ ॥ २२-२३ ॥

भूमेर्विभागं पूर्वं तु परीक्षेत विचक्षणः ।
ततो वास्तुप्रमाणं च प्रारभेत शुभेच्छया ॥ २४ ॥
समा स्थिरा च कठिना कृष्णा गौरी च या भवेत् ।
भूमिस्तत्र तु कर्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः ॥ २५ ॥
प्रथमं शोधनं कृत्वा लाङ्गलेन समुत्कृषेत् ।
अस्थिकीलकपालानि तृणगुल्मांश्च शोधयेत् ॥ २६ ॥
शोधयित्वा वसुमतीं प्रमाणं निर्दिशेत् ततः ।

चतुर निर्माताका पूर्व कर्तव्य है कि उस भूमि की भली भाँति परीक्षा करले। उसके पश्चात् शुभेच्छाके साथ नाप-जोख प्रारम्भ करे। जहाँ भी भूमि समथल, जमी हुई, कड़ी, काली या श्वेत हो, वहाँ निर्माताको नाट्यमण्डप बनाना चाहिए। पहले तो सब भूमिसे झाड़ झङ्खाड़ दूर करके उस पर हल चलवाना चाहिए और फिर उसमें से हड्डी, कील, खोपड़ी, घास-फूस तथा वृक्षोंकी जड़ें खोदकर निकाल देनी चाहिए। इस प्रकार भूमिको शोधकर नाट्यमण्डपके दीवारोंका चिह्न खींच देना चाहिए ॥ २४-२६½ ॥

त्रीण्युत्तराणि सौम्यञ्च विशाखापि च रेवती ॥ २७ ॥
हस्ततिष्यानुराधाश्च प्रशस्ता नाट्यकर्मणि ।
पुष्यनक्षत्रयोगे तु शुक्लं सूत्रं प्रसारयेत् ॥ २८ ॥
कार्पासं बादरं चापि वाल्कलं मौञ्जमेव च ।
सूत्रं बुधैस्तु कर्तव्यं यस्य च्छेदो न विद्यते ॥ २९ ॥

नाट्यमण्डप बनाना प्रारम्भ करनेके लिए तीनों उत्तरा (उत्तराफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद), विशाखा, रेवती, हस्त, पुष्य और अनुराधा श्रेष्ठ माने गए हैं। पुष्यनक्षत्रके योगमें श्वेत डोरेसे चिह्न बनाना चाहिए। वह डोरी कपास, नर्मा, सनईकी छाल या मूंजसे इस प्रकार बनानी चाहिए कि वह कहीं खीचनेमें टूट न जाय ॥ २७-२९ ॥

अर्धच्छिन्ने भवेत् सूत्रे स्वामिनो मरणं ध्रुवम् ।
त्रिभागच्छिन्नया रज्ज्वा राष्ट्रकोपो विधीयते ॥ ३० ॥
छिन्नायां तु चतुर्भागे प्रयोक्तुर्नाश उच्यते ।
हस्तप्रभ्रष्टया वापि कश्चित्त्वपचयो भवेत् ॥ ३१ ॥

यदि यह डोरी बीचमेंसे टूट जाय तो निश्चय ही नाट्यमण्डपके स्वामीकी मृत्यु

हो जाती है। यदि तीसरा भाग टूट जाय तो जनताका विरोध होता है। यदि चौथे भागसे टूट जाय तो नाट्यप्रयोक्ताका नाश होता है और यदि नापते-नापते डोरी हाथसे छूट जाय तो हानि होती है॥ ३०-३१॥

तस्मान्नित्यं प्रयत्नेन रज्जुग्रहणमिष्यते।
कार्यं चैव प्रयत्नेन मानं नाट्यगृहस्य तु॥ ३२॥
मुहूर्तेनानुकूलेन तिथ्या च करणेन च।
ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा च पुण्याहं वाचयेत् ततः॥ ३३॥
शान्तितो यत्नतो धृत्वा तत्र सूत्रं प्रसारयेत्।
चतुष्षष्टिं करान् कृत्वा द्विधा कुर्यात् पुनश्च तान्॥ ३४॥
पृष्ठतो यो भवेद्भागो द्विधा भूतो भवेच्च सः।
तस्यार्धेन विभागेन रङ्गशीर्षं प्रयोजयेत्॥ ३५॥
पश्चिमे तु पुनर्भागे नेपथ्यगृहमादिशेत्।
विभज्य भागान् विधिवद् यथावदनुपूर्वशः॥ ३६॥
शुभे नक्षत्रयोगे तु मण्डपस्य निवेशनम्।

इसलिए बड़ी सावधानीसे डोरी पकड़नी चाहिए और बहुत समझ बूझकर नाट्यघरकी नाप-जोख करनी चाहिए। अच्छे मुहूर्त, तिथि और करणका विचार करके ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करके पुण्याहवाचन कराना चाहिए। तब बड़े शान्त चित्तसे और सावधानीसे डोरी फैलानी चाहिए। चौसठ हाथ नापकर उसके दो भाग कर देने चाहिए। पीछेका जो भाग हो उसके भी दो भाग कर देने चाहिए। उसके अगले आधे भागमें रंगशीर्ष बनाना चाहिए और पिछले आधे भाग में नेपथ्य-गृह बनाना चाहिए। सब भाग विधि और क्रमके अनुसार बाँटकर शुभ नक्षत्रके योगमें मण्डप बनाना चाहिए॥ ३२-३६½॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्मृदङ्गपणवादिभिः ॥ ३७॥
सर्वतूर्यनिनादैश्च स्थापनं कार्यमेव च।
उत्सार्याणि त्वनिष्टानि पाखण्डाश्रमिणस्तथा॥ ३८॥
काषायवसनाश्चैव विकलाश्चैव ये नराः।

शंख, दुन्दुभी, नगाड़ा, मृदंग, पणव (तासा) और सब प्रकारकी तुरही बजाकर नाट्यमण्डपकी नींव डालनी चाहिए। पाखण्डी, संन्यासी (गेरुआ वस्त्र पहनने

वाले) तथा विकलाङ्ग (अपाहिज) आदि जितने प्रकारके अनिष्ट पुरुष माने गए हैं उन्हें हटा देना चाहिए॥ ३७-३८३ ॥

निशायां च बलिः कार्यो नानाभोजनसंयुतः॥ ३६॥
गन्धपुष्पफलोपेतो दिशो दश समाश्रितः।
पूर्वेण शुक्लान्नयुतो नीलः स्याद् दक्षिणेन च॥ ४०॥
पश्चिमेन बलिः पीतो रक्तश्चैवोत्तरेण तु।
यस्यां यश्चाधिदैवं तु दिशि संपरिकीर्तितम्॥ ४१॥
तादृशस्तत्र दातव्यो बलिर्मन्त्रपुरस्कृतः।
स्थापने ब्राह्मणेभ्यश्च दातव्यो घृतपायसः॥ ४२॥
मधुपर्कस्तथा राज्ञे कर्तृभ्यश्च गुडौदनम्।

रातको दशों दिशाओंमें गन्ध, पुष्प, फलसे युक्त तथा अनेक प्रकारके भोजनके साथ बलि देनी चाहिए। पूर्वकी ओर श्वेत अन्नको, दक्षिणको ओर नील अन्न की, पश्चिमकी ओर पीले अन्नकी तथा उत्तर की ओर लाल अन्नकी बलि देनी चाहिए। जिस दिशाका जो अधिष्ठाता देवता माना गया है वैसी ही मन्त्रयुक्त बलि उसके लिए देनी चाहिए। नींव डालनेके समय ब्राह्मणोंको घी और पायस (खीर) देनी चाहिए। राजाको मधुपर्क (दही, घी, और मधु) देना चाहिए। मण्डप बनाने वालोंको गुडौदन (गुड़ और भात) देना चाहिए॥ ३९-४२३॥

नक्षत्रेण तु कर्त्तव्यं मूलेन स्थापनं बुधैः॥ ४३॥
मुहूर्त्तेनानुकूलेन तिथ्या सुकरणेन च।
एवं तु स्थापनं कृत्वा भित्तिकर्म प्रयोजयेत्॥ ४४॥
भित्तिकर्मणि निर्वृत्ते स्तम्भानां स्थापनं ततः।
तिथिनक्षत्रयोगेन शुभेन करणेन तु॥ ४५॥
स्तम्भानां स्थापनं कार्यं रोहिण्या श्रवणेन वा।
आचार्येण सुयुक्तेन त्रिरात्रोपोषितेन च॥ ४६॥
स्तम्भानां स्थापनं कार्यं प्राप्ते सूर्योदये शुभे।

विद्वानोंके द्वारा मूल नक्षत्रमें नींव डालनी चाहिए। नींव डालनेके बाद अच्छे मुहूर्त, तिथि और करणका विचार करके भीत (दीवार) बनानेका काम प्रारम्भ करना चाहिए। भीतें बना चुकनेपर अच्छे नक्षत्र, योग और करणका विचार करके रोहिणी या श्रवण नक्षत्रमें खम्भे खड़े करने चाहिए। प्रातः काल सूर्योदय हो

चुकने पर ऐसे श्रेष्ठ आचार्योंके द्वारा खम्भोंकी स्थापना करानी चाहिए जो पिछले तीन दिन तथा रात तक निराहार व्रत रह चुके हों ॥ ४३-४६३ ॥

प्रथमे ब्राह्मणस्तम्भे सर्पिस्सर्षपसंस्कृते ॥ ४७ ॥
सर्वशुक्लो विधिः कार्यो दद्यात् पायसमेव तु ।
ततश्च क्षत्रियस्तम्भे वस्त्रमाल्यानुलेपनम् ॥ ४८ ॥
सर्वं रक्तं प्रदातव्यं द्विजेभ्यश्च गुडौदनम् ।
वैश्यस्तम्भे विधिः कार्यो दिग्भागे पश्चिमोत्तरे ॥ ४९ ॥
सर्वं पीतं प्रदातव्यं द्विजेभ्यश्च घृतौदनम् ।
शूद्रस्तम्भे विधिः कार्यः सम्यक् पूर्वोत्तराश्रये ॥ ५० ॥
नीलप्रायं प्रदातव्यं कृसरं च द्विजाशनम् ।

घी और सरसोंसे शुद्ध किए हुए पहले ब्राह्मणस्तम्भ पर सब श्वेत वस्तुओंका प्रयोग करना चाहिए और खीरका दान करना चाहिए। इसके पश्चात् क्षत्रिय खम्भे पर वस्त्र तथा माला लपेटनी चाहिए। यहाँ पर सब रक्त ही वस्तुओंका प्रयोग करना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य (द्विजों) को गुडौदन देना चाहिए। पश्चिमोत्तर दिशामें वैश्यस्तम्भ की स्थापना करनी चाहिए तथा पीली वस्तुओंसे पूजा-अर्चा करनी चाहिए। द्विजोंको घी और चावल देना चाहिए। इसी प्रकार पूर्वोत्तर दिशामें बड़ी विधिसे शूद्रस्तम्भकी स्थापना करनी चाहिए। नीली वस्तुओंसे पूजा-अर्चा करनी चाहिए। तथा द्विजोंके भोजनके लिये (मटर और चावलकी मसालेदार) खिचड़ी देनी चाहिए ॥ ४७-५०३ ॥

पूर्वे तु ब्राह्मणस्तम्भे शुक्लमाल्यानुलेपने ॥ ५१ ॥
निक्षिपेत् कनकं मूले कर्णाभरणसंश्रयम् ।
ताम्रं चापि प्रदातव्यं स्तम्भे क्षत्रियसंज्ञके ॥ ५२ ॥
वैश्यस्तम्भस्य मूले तु रजतं सम्प्रदापयेत् ।
शूद्रस्तम्भस्य मूले तु दद्यादायसमेव च ॥ ५३ ॥
शेषेष्वपि च निक्षेप्यं स्तम्भमूलेषु काञ्चनम् ।

सबसे पहले ब्राह्मणस्तम्भपर श्वेत मालाएँ और श्वेत चन्दन लगाकर कर्णफूल जितना सोना उसकी जड़में डालदेना चाहिए। क्षत्रियस्तम्भोंकी जड़में ताँबा, वैश्य-स्तम्भकी जड़में चाँदी और शूद्रस्तम्भकी जड़में लोहा भी डालना चाहिए। इनके अतिरिक्त खम्भोंकी जड़में सोना तो डालना ही चाहिए ॥ ५१-५३३ ॥

स्वस्तिपुण्याहघोषेण जयशब्देन चैव हि ॥ ५४॥
स्तम्भानां स्थापनं कार्यं पर्णमालापुरस्कृतम् ।
रत्नदानैः सगोदानैर्वस्त्रदानैरनल्पकैः ॥ ५५ ॥
ब्राह्मणान् स्थापयित्वा तु स्तम्भमुत्थापयेत् ततः ।
अचलं चात्यकम्पं च तथैवाचलितं पुनः ॥ ५६ ॥

स्वस्तिवाचन, पुण्याहवाचन और जय शब्दका घोष करते हुए पत्तोंकी मालासे लिपटे हुए खम्भे लाकर रखने चाहिए और फिर ब्राह्मणोंको बहुतसे रत्न, गौ और वस्त्र आदिसे सन्तुष्ट कर वह खम्भा खड़ा करना चाहिए जो सीधा अडिग खड़ा हो, लपलपाता न हो और टेढ़ा भी न हो ॥ ५४–५६ ॥

स्तम्भस्योत्थापने सम्यग् दोषा ह्येते प्रकीर्तिताः ।
अवृष्टिरुक्ता चलने वलने मृत्युतो भयम् ॥ ५७ ॥
कम्पने परचक्रात् तु भयं वदति दारुणम् ।
दोषैरेतैर्विहीनं तु स्तम्भमुत्थापयेच्छिवम् ॥ ५८ ॥

खम्भा खड़ा करनेमें इतने दोष बताए गए हैं–स्तम्भके डगमगा जानेसे सूखा पड़ता है, टेढ़े-मेढ़े होनेसे मरनेका भय रहता है और लपलपानेसे शत्रुके आक्रमणका भय रहता है। इन दोषोंसे हीन कल्याणकारी स्तम्भ ही खड़ा करना चाहिए ॥ ५७–५८ ॥

पवित्रं ब्राह्मणस्तम्भे दातव्या दक्षिणा च गौः ।
शेषाणां भोजनं कार्यं स्थापने कर्तृसंश्रयम् ॥ ५९ ॥

ब्राह्मणस्तम्भके स्थापन करते समय पवित्रतासे दक्षिणा और गौका दान करना चाहिए तथा निर्मातासे सम्बन्ध रखनेवाले सब लोगोंको भोजन देना चाहिए ॥५९॥

मन्त्रपूर्वं च तद्देयं नाट्याचार्येण धीमता ।
पुरोहितं नृपं चैव भोजयेद् मधुपायसम् ॥ ६० ॥
कर्तृनपि तथा सर्वान् कृसरं लवणोत्तरम् ।
सर्वमेवं विधिं कृत्वा सर्वातोद्यैः प्रवादितैः ॥ ६१ ॥
अभिमन्त्र्य यथान्यायं स्तम्भमुत्थापयेच्छुचिः ।
यथाचलो गुरुर्मेरुर्हिमवांश्च महाबलः ॥ ६२ ॥
जयावहो नरेन्द्रस्य तथा त्वमचलो वह ।

स्तम्भद्वारं च भित्तिं च नेपथ्यगृहमेव च ॥ ६३ ॥
एवमुत्थापयेत् तज्ज्ञो विधिदृष्टेन कर्मणा ।

बुद्धिमान नाट्याचार्यको चाहिए कि साथ मन्त्रके वह दक्षिणा और गौ दे । पुरोहित तथा राजाको मधु और पायस (खीर) खिलावे । सभी बनाने वालोंको नमकीन खिचड़ी दे । यह सब विधि करके और सब बाजोंको बजाकर नियमके अनुसार उसे अभिमन्त्रित करके पवित्रतासे स्तम्भ खड़ा करे और कहे कि—'जिस प्रकार भारी मेरु पर्वत तथा विशाल हिमाचल अचल है और जैसे राजाकी जय अचल होती है वैसे ही तुम भी अचल हो।' इसी प्रकार शास्त्रीय विधिसे शास्त्रज्ञोंको चाहिए कि स्तम्भद्वार, भीत और नेपथ्यघर बनावें ॥ ६०-६३½ ॥

रङ्गपीठस्य पश्चात् तु कर्तव्या मत्तवारणी ॥ ६४ ॥
चतुःस्तम्भसमायुक्ता रङ्गपीठप्रमाणतः ।
अध्यर्धहस्तोत्सेधेन कर्तव्या मत्तवारणी ॥ ६५ ॥
उत्सेधेन तयोस्तुल्यं कर्तव्यं रङ्गमण्डपम् ।
तस्य माल्यं च वस्त्रं च गन्धमाल्यं तथैव च ॥ ६६ ॥
नानावर्णानि देयानि तथा भूतप्रियो बलिः ।
पायसं चात्र दातव्यं स्तम्भानां कुशलैरधः ॥ ६७ ॥
भोजने कृसरं चैव दातव्यं ब्राह्मणाशनम् ।
एवं विधिपुरस्कारैः कर्तव्या मत्तवारणी ॥ ६८ ॥

रङ्गपीठके पीछे चार खम्भोंपर रङ्गपीठसे लगभग आध हाथ ऊंची अम्बारी (मत्तवारणी) बनानी चाहिए और रंगपीठ तथा मत्तवारणी दोनोंकी ऊंचाईके समान रंगमण्डप बनाना चाहिए। उसपर माला, वस्त्र, गन्धपदार्थ और अनेक प्रकारके रङ्ग चढ़ाने चाहिए। विद्वानों द्वारा भूतोंको प्रिय लगनेवाली बलि और खीर खम्भोंके नीचे देनी चाहिए। ब्राह्मणोंको भोजनमें खिचड़ी देनी चाहिए। इस प्रकारके पुरस्कारोंके द्वारा मत्तवारणी बनवानी चाहिए ॥ ६४-६८ ॥

रङ्गपीठं ततः कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ।
रङ्गशीर्षं तु कर्तव्यं षड्दारुकसमन्वितम् ॥ ६९ ॥
कार्यं द्वारद्वयं चात्र नेपथ्यगृहकस्य तु ।
पूरेण मृत्तिका चात्र कृष्णा देया प्रयत्नतः ॥ ७० ॥

लाङ्गलेन समुत्कृष्य निर्लोष्ठतृणशर्करा ।
लाङ्गले शुद्धवर्णौ तु धुर्यौ योज्यौ प्रयत्नतः ॥ ७१ ॥
कर्त्तारः पुरुषास्तत्र येऽङ्गदोषविवर्जिताः ।
अहीनाङ्गैश्च बोढव्या मृत्तिका पीठकर्नवैः ॥ ७२ ॥

इसके पश्चात् शास्त्रविधिसे रंगपीठ बनावे और छः लकड़ियोंसे युक्त रङ्गशीर्ष बनावे। यहाँ नेपथ्यगृहके दो द्वार बनाकर नेपथ्यगृहकी भूमि काली मिट्टीसे भर देनी चाहिए। हल चलाकर रोड़े, घास, पात और कंकड़ी निकाल देनी चाहिए। हलमें केवल अछूता बैलही जोतने चाहिए। वहाँ काम करनेवाले सब लोग अंगदोषसे हीन हों और वे ही नये टोकरोंसे मिट्टी ढोवें ॥ ६९-७२ ॥

एवंविधैश्च कर्त्तव्यं रङ्गशीर्षं प्रयत्नतः ।
कूर्मपृष्ठं न कर्त्तव्यं मत्स्यपृष्ठं तथैव च ॥ ७३ ॥
शुद्धादर्शतलाकारं रङ्गशीर्षं प्रशस्यते ।
रत्नानि चात्र देयानि पूर्वे वज्रं विचक्षणैः ॥ ७४ ॥
वैदूर्यं दक्षिणे चैव स्फटिकं पश्चिमे तथा ।
प्रवालमुत्तरे चैव मध्ये तु कनकं भवेत् ॥ ७५ ॥

इस प्रकार सावधानीसे रङ्गपीठ बनाना चाहिए। वह न कछुएकी पीठ जैसा ऊँचा हो और न मछलीकी पीठकी तरह ढलवा ही हो, प्रत्युत शुद्ध दर्पणके तलके समान रंगशीर्ष ही श्रेष्ठ समझा जाता है। इस रंगशीर्षपर भी रत्न देने चाहिये। चतुरोंको चाहिये कि पूर्वमें वज्र, दक्षिणमें वैदूर्य, पश्चिममें स्फटिक, उत्तरमें मूंगा और मध्यमें सुवर्ण दें ॥ ७३-७५ ॥

एवं रङ्गशिरः कृत्वा दारुकर्म प्रवर्त्तयेत् ।
ऊहप्रत्यूहसंयुक्तं नानाशिल्पप्रयोजितम् ॥ ७६ ॥
नानासञ्जवनोपेतं बहुव्यालोपशोभितम् ।
अट्टालभञ्जिकाभिश्च समन्तात् समलंकृतम् ॥ ७७ ॥
नियूहकुहु(ह)रोपेतं नानाग्रथितवेदिकम् ।
नानाविन्याससंयुक्तं यन्त्रजालगवाक्षकम् ॥ ७८ ॥
सुपीठधरणीयुक्तं कपोतालीसमाकुलम् ।
नानाकुट्टिमविन्यस्तैः स्तम्भैश्चाप्युपशोभितम् ॥ ७९ ॥

इस प्रकार रंगशीर्ष निर्माण करके लकड़ीका काम प्रारम्भ करना चाहिये। भली भाँति तर्क-वितर्क करके अनेक प्रकारकी कलाओंका प्रयोग करना चाहिये। अनेक प्रकारकी सजावट वाला, बहुतसे सर्पोंकी आकृतियों वाला, अनेक प्रकारकी कठपुतलियोंसे सज्जित, छोटे छोटे झरोखों वाला, अनेक प्रकारकी सजावटसे भरी वेदियों वाला, अनेक प्रकारके यन्त्र-जाली और झरोखोंसे युक्त, अच्छे खम्भोंपर रखे हुए पीठों, धारणों और कबूतरके झुंडोंसे भरा पुरा, अनेक रङ्गके रङ्गी हुई वेदीपर सुसज्जित स्तम्भोंवाला लकड़ीका काम होना चाहिये ॥ ७६-७९ ॥

एवं काष्ठविधिं कृत्वा भित्तिकर्म प्रवर्त्तयेत् ।
स्तम्भं वा नागदन्तं वा वातायनमथापि वा ॥ ८० ॥
कोणं वा सप्रतिद्वारं दारुविद्धं न कारयेत् ।
कार्यः शैलगुहाकारो द्विभूमिर्नाट्यमण्डपः ॥ ८१ ॥
मन्दवातायनोपेतो निर्वातो धीरशब्दभाक् ।
तस्मान्निर्वातः कर्त्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः ॥ ८२ ॥
गाम्भीर्यं सुस्वरत्वं च कुतपस्य भवेदिति ।

इस प्रकार लकड़ीके कामोंको करके भीतका काम प्रारम्भ करना चाहिये। स्तम्भ, खूटी, झरोखा और कोना कभी भी द्वारके सामने या द्वारको ढंक लेनेवाले न बनाए जायँ। नाट्यमण्डप पर्वतकी गुफाकी आकृति वाला दो खण्डका बनाना चाहिये। जिसमें छोटी छोटी खिड़कियाँ हों, हवा न आती हो तथा शब्द गूंजता हो, इसलिये नाट्यमण्डप बनाने वालोंको निर्वात नाट्यमण्डप बनाना चाहिये। जिससे गाने-बजाने वालोंके स्वरकी गम्भीरता बनी रहे ॥ ८०-८२½ ॥

भित्तिकर्मविधिं कृत्वा भित्तिलेपं प्रदापयेत् ॥ ८३ ॥
सुधाकर्म तथैवास्य कुर्याद् बाह्यं प्रयत्नतः ।
भित्तिष्वपि च लिप्तासु परिमृष्टासु सर्वतः ॥ ८४ ॥
समासु जातशोभासु चित्रकर्म प्रवर्त्तयेत् ।
चित्रकर्मणि चालेख्याः पुरुषाः स्त्रीजनास्तथा ॥ ८५ ॥
लताबन्धाश्च कर्त्तव्याश्चरितं चात्मभोगजम् ।
एवं विकृष्टं कर्त्तव्यं नाट्यवेश्मप्रयोक्तृभिः ॥ ८६ ॥

भित्तिकर्म करके भीतपर पलस्तर करना चाहिये। उसके बाद उसपर चूना

पोतना चाहिये। जब भीत लीप पोतकर ठीक हो जाय और समान शोभा वाली हो जाय तब उसपर चित्र बनाना चाहिये। चित्रमें स्त्री, पुरुष, लता आदि, अपने अनुभवके बहुत से आचरण अङ्कित कर देने चाहिये। इस प्रकार विकृष्ट नामका नाट्यघर बनाना चाहिये ॥ ८३-८६ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुरस्रस्य लक्षणम्।
समन्ततस्तु कर्त्तव्यो हस्तो द्वात्रिंशदेव तु ॥ ८७ ॥
शुभभूमिविभागस्थो नाट्यज्ञैर्नाट्यमण्डपः।
यो विधिः पूर्वमुक्तस्तु लक्षणं मण्डलानि च ॥ ८८ ॥
चतुरस्रस्य तान्येव कारयेन्नाट्यवेश्मनः।
चतुरस्रं समं कृत्वा सूत्रेण प्रविभज्य च ॥ ८९ ॥
बाह्यतः सर्वतः कार्या भित्तिः श्लिष्टेष्टका दृढा।
तत्राभ्यन्तरतः कार्या रङ्गपीठे यथादिशम् ॥ ९० ॥
दश प्रयोक्तृभिः स्तम्भाः शक्ता मण्डपधारणे।
स्तम्भानां बाह्यतः स्थाप्यं सोपानाकृति पीठकम् ॥ ९१ ॥
इष्टकादारुभिः कार्यं प्रेक्षकाणां निवेशनम्।
हस्तप्रमाणैरुत्सेधैर्भूमिभागसमुत्थितैः ॥ ९२ ॥
रङ्गपीठविलोक्यं च कुर्यादासनिकं विधिम्।
षडन्यान् सुन्दरान् दद्यात् पुनः स्तम्भान् यथादिशम् ॥ ९३ ॥
विधिना स्थापयेत् प्राज्ञो दृढान् मण्डपधारणे।
अष्टौ स्तम्भान् पुनश्चैव तेषामुपरि कारयेत् ॥ ९४ ॥
संस्थाप्यं च पुनः पीठमष्टहस्तप्रमाणतः।
तत्र स्तम्भाः प्रदातव्यास्तज्ज्ञैर्मण्डपधारणे ॥ ९५ ॥
धारणीधारितास्ते च शालस्त्रीभिरलंकृताः।

अब चतुरस्रका लक्षण बताता हूँ—यह चारों ओरसे बत्तीस हाथका होना चाहिये। नाट्य जाननेवालेको यह मण्डप भी सुन्दर भूमिमें बनाना चाहिये। जो विधि, लक्षण और मङ्गलाचार पहले विकृष्टके लिये बताया जा चुका है वही चतुरस्रके लिये भी कराना चाहिये। चारो ओरसे बराबर करके डोरेसे बाँट ले और बाहर चारो ओर पक्की इटोंकी जोड़ाईसे भीत बनानी चाहिये। फिर भीतरकी ओर रङ्ग-

पीठके ऊपर मण्डप धारण करनेके लिये दस खम्भे बनाना चाहिये। इन खम्भोंके ऊपर सीढ़ीकी आकृति वाले पीठासन प्रेक्षकोंके बैठनेके लिये ईंट और लकड़ीसे बनाना चाहिये। आसन इस प्रकारसे बनाने चाहिये कि एक-एक हाथ ऊँचे पृथ्वीसे पिछले आसन उठे हुये हों, जिससे रङ्गपीठ भली भाँति दिखाई दे सके। जिस प्रकार खम्भे बनानेका विधान बताया गया है। उन उन दिशाओंमें छः दृढ़ और सुन्दर खम्भे लगा देने चाहिये। जिससे मण्डप थमा रहे और फिर उनके ऊपर आठ खम्भे और लगा देने चाहिये। जिसपर मण्डप बनाया जाय और फिर आठ हाथ ऊँचा रङ्गपीठ बनाया जाय जिसमें उचित खम्भोंका प्रयोग करना चाहिये। उनमें ऐसी टाड़ें लगा देनी चाहिये जिनमें पुतलियाँ खुदी हुई हों ॥ ८७-९५½ ॥

नेपथ्यगृहकं चैव ततः कार्यं प्रयोक्तृभिः ॥ ९६ ॥
द्वारं चैकं भवेत् तस्य रङ्गपीठप्रवेशने।
जनप्रवेशनं चैवमाभिमुख्येन कारयेत् ॥ ९७ ॥
रङ्गस्याभिमुखं कार्यं द्वितीयं द्वारमेव तु।
अष्टहस्तं तु कर्त्तव्यं रंगपीठं प्रमाणतः ॥ ९८ ॥
चतुरस्रं समतलं वेदिकासमलंकृतम्।
पूर्वप्रमाणनिर्दिष्टा कर्त्तव्या मत्तवारणी ॥ ९९ ॥
चतुःस्तम्भसमायुक्ता वेदिकायास्तु पार्श्वतः।
समुन्नतं समं चैव रंगपीठं तु कारयेत् ॥ १०० ॥

इसके पश्चात् प्रयोक्ताओंको नेपथ्यगृह बनाना चाहिये जिसका एक द्वार रङ्गपीठमें प्रवेश करनेके लिये हो। जिसमेंसे सभी अभिनेता लोग आ जा सकें। उसका दूसरा द्वार रङ्गपीठमें होना चाहिये जो रंगपीठके नापके अनुसार आठ हाथका हो तथा चौकोर समतल वेदिकासे सजी हुई पहले बताये हुये नापके अनुसार मत्तवारणी बनानी चाहिये। इस वेदीके पास चार खम्भोंवाला ऊँचा तथा समतल रंगपीठ बनाना चाहिये ॥ ९६-१०० ॥

विकृष्टेप्युन्नतं कार्यं चतुरस्रे समं तथा।
एवमेतेन विधिना चतुरस्रं गृहं भवेत् ॥ १०१ ॥

विकृष्टमें ऊँचा और चतुरस्रमें सम अर्थात् कुछ नीचा बनाना चाहिये इस प्रकारसे चतुरस्र गृह बनाना चाहिये ॥ १०१ ॥

त्र्यस्रस्य मण्डपस्यापि संप्रवक्ष्यामि लक्षणम् ।
त्र्यस्रं त्रिकोणं कर्त्तव्यं नाट्यवेश्मप्रयोक्तृभिः ॥ १०२ ॥

मध्ये त्रिकोणमेवास्य रंगपीठं तु कारयेत् ।
द्वारं तेनैव कोणेन कर्त्तव्यं तु प्रवेशने ॥ १०३ ॥

द्वितीयं चैव कर्त्तव्यं रंगपीठस्य पृष्ठतः ।
स तु सर्वः प्रयोक्तव्यः त्र्यस्रस्यापि प्रयोक्तृभिः ॥ १०४ ॥

एवमेतेन विधिना कार्यं नाट्यगृहं बुधैः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पूजामेषां यथाविधि ॥ १०५ ॥

अब मैं त्र्यस्रमण्डपके लक्षण बताता हूं। त्र्यस्रनाट्यगृहको तिकोना बनाना चाहिये और इसी त्रिकोणके बीचके कोने में रङ्गपीठ बनाना चाहिये। इस कोणसे एक द्वार रङ्गपीठपर प्रवेश करनेके लिये बनाना चाहिये और दूसरा रङ्गपीठके पीछेसे। शेष सब विधान उसी प्रकार करना चाहिये जैसा पहले कहा जा चुका। इस प्रकार पण्डितोंको नाट्यगृह बनाना चाहिये। इसके पश्चात् मैं पूजाका विधान बताता हूं।

भारतीय नाट्यशास्त्रमें प्रेक्षागृह लक्षण नामका

द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ।

